उपसंहार

हिंदी साहित्य में मुक्तिबोध को प्रबुद्ध रचनाकार माना जाता है। मुक्तिबोध साहित्य में जनधार्मिता के सतही पक्ष को तार्किक दृष्टि प्रदान की है। साहित्य संपूर्ण समाज को अभिव्यंजित करता है। किसी भी साहित्य में संपूर्ण समाज की अभिव्यक्ति तभी संभव होगा, जब साहित्यकार का इतिहासबोध, समाजबोध एवं सांस्कृतिकबोध का ज्ञान व्यापक एवं परिष्कृत हो। मुक्तिबोध का इतिहासबोध समसामायिक परिवेश से भी प्रासंगिक है। उनकी दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य एवं दृष्टिकोण का होना आवश्यक है। कोई भी रचनाकार साहित्य का विवेचन किस 'सतही पक्ष' से कर रहा है, इसका भी मूल्यांकन होना चाहिए। मुक्तिबोध की रचनाभूमि जनसरोकार से जुड़ी है, जिसमें आखिरी पायदान पर खड़े व्यक्ति की स्वायत्तता शामिल हैं इतिहास में व्याख्यायित तमाम संघर्ष मानव इतिहास के विकास प्रक्रिया को अभिव्यंजित करता है। समाज गतिशील होता है। मुक्तिबोध की रचनात्मक अभिव्यक्ति में समाज के वर्गीय स्वरूप की भी आलोचना है।

आधुनिक काल में दो अहम ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र होता है, और वह घटना है- प्रथम-विश्वयुद्ध (1914-18) एवं द्वितीय- विश्वयुद्ध (1939-45), इन दोनों विश्वयुद्ध के कारण मानव समाज पर व्यापक असर पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध ने मानव-अस्तित्व के इतिहास पर ही प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर दिया। मुक्तिबोध द्वितीय-विश्वयुद्ध के दौर में प्रखर कवि के रूप सामने आते हैं, जिनकी वैचारिक भावभूमि जनसंवेदनाओं से जुड़ी है। द्वितीय-विश्वयुद्ध के दौर में पूँजीवाद चरम पर था। यांत्रिक साम्राज्यवादी विस्तार में विश्व दो धरों में बँट चुका था। इन दो

धरों के बीच गरीब-मजलूम जनता का इतिहास भी बड़ा ही कष्टप्रद है। मुक्तिबोध की साहित्यिक रचनाओं में इन सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रूपायन हुआ है।

मुक्तिबोध कहानी, उपन्यास, आलोचना, कविता एवं डायरी में भी शासनतंत्र के तमाम पाखंड का भंडाफोड़, करते हैं। साहित्य व्यक्ति के व्यवहारिक क्रियाकलाप को सीधे-सीधे नहीं बताता, अपितु उसकी प्रक्रिया एवं संरचनात्मक रूप को दर्शाता है। जैसे- आदिकाल की परिस्थिति आधुनिक काल की परिस्थिति से भिन्न है, ठीक वैसे ही रीतिकाल की परिस्थिति भक्तिकाल से। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल में मानव के विकास-प्रक्रिया का ऐतिहासिक पहलू रहा है। मुक्तिबोध का इतिहासबोध भी इसी मानव समाज के ऐतिहासिक प्रक्रिया एवं संरचना का तार्किक विवेचन करता है। आदिम व्यवस्था साम्यवादी व्यवस्था थी। धीरे-धीरे सामाजिक स्वरूप में बदलाव हुआ और सामंतवादी, दास एवं पूँजीवादी व्यवस्था में परिणत हो गया। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में पूँजीवादी व्यवस्था की गहरी पैठ है। मुक्तिबोध इसी बरगदनुमा पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण के खिलाफ है, जिसमें मानव का अस्तित्व भी प्रेत-आत्मा की भाँति है। यह मानव इतिहास के उस गुँहान्धकार की भाँति है, जिसमें शोषित, पीड़ित वर्ग हमेशा अँधेरे बंद कमरे में जीवन जीने को विवश है।

आर्थिक वैषम्यता व्यक्ति के जीवनशैली को प्रभावित करता है। रामलाल कभी मि. बॉस नहीं बन सकता है। लेखक ने भारतीय समाज एवं संरचना को भी प्रमुखता से उजागर किया है। मध्यवर्ग की जड़ता भी कम नहीं है। वह आर्थिक

रूप से जितना निर्बल है उतना ही संघर्ष के क्षेत्र में अकर्मण्य भी। लेखक ने एक बेहतर समाज के निर्माण में जड़ता और निष्क्रियता को सिरे से खारिज किया है। आर्थिक और सामाजिक विषमता समाज में अनेक विद्रपता को जन्म देती है। मुक्तिबोध इतिहास के प्रति बड़े ही सचेत एवं संवेदनशील लेखक के तौर पर जाने जाते हैं। इतिहास हमें एक बेहतर वर्तमान और भविष्य की निर्मिति में सहयोग प्रदान करता है। भक्तिकाल का इतिहास आज भी इसीलिए प्रासंगिक है, क्योंकि भक्तिकाल के समाज का संघर्ष भी सामंती और राजशाही व्यवस्था के खिलाफ था। भक्तिकाल का जनसामान्य वर्ग सामाजिक जड़ता, धार्मिक पाखंड, जातिवाद, छूआछूत एवं ऊँच-नीच के खिलाफ संघर्ष किया है। कबीर, नानक, दादू, रैदास, मीराबाई, तुलसी, मलूकदास एवं आंडाल आदि सामाजिक जड़ता के खिलाफ संघर्ष का किया।

वस्तुतः प्रगतिशीलता सामाजिक पीढ़ी पर भी निर्भर करती है। कबीरकालीन समाज शोषण के खिलाफ पंडित, मौलवी और शाही सत्ता के विरूद्ध आमने-सामने संघर्ष किया है। जाति मनुष्य की बनाई हुई एक व्यवस्था है, उसपर जन्म लेने वाले शिशु का कोई अधिकार नहीं होता है। इसीलिए जाति विशेष की वर्चस्वता एवं श्रेष्ठता को भक्तिकाल में सिरे से खारिज किया गया। और 'राम' के एकत्व रूप सभी मनुष्य के सामने रखा गया। कबीर का राम निरंकारी है। कबीर ने ईश्वर के 'एकत्व' स्वरूप पर बल दिया और सभी मनुष्य को उसकी संतान बताया। कबीर की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है, क्योंकि वह मनुष्य के समूल विकास में यकीन करते थे। इसीलिए जब भक्तिकाल के इतिहास और उसकी सामाजिक संरचना की व्याख्या की जाती है, तब कबीर के

विचार को प्रमुखता से उजागर किया जाता है। मुक्तिबोध साहित्य में अनुभूति को प्रमुखता से स्वीकारते हैं, तो वहीं कबीर 'आँखिन देखी' की उक्ति देते है। साहित्य में, और समाज में भी प्रगति तभी संभव है, जब मानव समाज के बीच की अनुभूति संवेदनात्मक स्तर से जुड़ा हो। यह संवेदना अचानक नहीं बनती है, इसीलिए मानव समाज को स्वयं में लगातार परिष्कार करना पड़ता हैं इतिहासबोध का संदर्भ भी इन्हीं तत्वों से जुड़ा हुआ।

मुक्तिबोध की कहानियों एवं कविताओं में भी आधुनिक समाज की समस्या का चित्रण हुआ। आधुनिक समाज के केन्द्र में 'पूँजी' अहम हैं वह वर्गीय ढाँचा की निर्मिति को अलग-अलग स्वरूपों में व्याख्यायित करता है। दिलचस्प बात तो यह है कि इस वर्गीय ढाँचा में प्रत्येक वर्ग की मौन, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहमति है, नहीं तो दीमक भी बिकाऊ है और राव साहब भी बाह्य दृष्टि में 'उदार' और 'जेंटलमैन' मालूम पड़ते है। पूँजी सांस्कृतिक प्राधान्यता को भी प्रभावित करता है, जिसमें मध्यवर्ग सबसे ज्यादा प्रभावित होता है। मुक्तिबोध इन सभी तत्वों का विवेचन सूक्ष्मता से करते हैं। उनकी कहानी प्रतीकों बिंबों एवं रूपकों से केन्द्रित होकर वैचारिक जगत की आम जगत समस्या को अभिव्यंजित करती है। उनकी कहानियों में मध्यवर्ग की जड़ता, आर्थिक वैषम्यता, पूँजीवाद की नाभिनालबद्ध सरकारी तंत्र का खुलासा परत-दर-परत होता है।

मुक्तिबोध काव्य को सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकारते हैं। वे काव्य की रचना-प्रक्रिया एवं उसके प्रयोगधर्मिता के प्रति बहुत संवेदनशील है। इसीलिए रचनात्मक भावभूमि के सतह पर जितने आत्मचेतन है, उतनी ही उनकी रचनाओं

में जीवन और समाज की प्रसंग की बहु-वैविध्यता भी। मुक्तिबोध कबीर को अधिक आधुनिक और प्रासंगिक मानते हैं। तुलसी की रचना में उन्हें सामंती समाज की सहमति नजर आती है, जो उच्च और निम्न वर्ग एवं जाति दोनों स्तरों से देखा जा सकता है। साहित्य के विकास में सामाजिक स्थिति बहुत हदतक प्रभावित करती है। लेकिन रचनाकार के रचनात्मक मनोभूमि से ही उसका सतही पक्ष भी उजागर होता है। मीराबाई शाही परिवार और सत्ता के खिलाफ चुनौती दी। आज भी मीराबाई की प्रासंगिकता कृष्णभक्त मीरा से कहीं ज्यादा स्त्री-समाज को पुरूषप्रधान के खिलाफ प्रतिरोध करने का बल प्रदान करता है। यह प्रतिरोध वर्ग एवं वर्ण से ऊपर उठकर 'मानस-एकता' के प्रतीक रूप में है।

मुक्तिबोध रीतिकालीन साहित्य को ह्रासकालीन साहित्य की संज्ञा दी है। ह्रासकालीन साहित्य, वस्तुतः साहित्य की रचना-प्रक्रिया एवं उसके विविध आयाम से जुड़ा हुआ है। रीतिकाल में नायिकाभेद, नखसिख वर्णन एवं राजदरबारी साहित्य अधिक लिखा गया है। जनसामान्य वर्ग इस काल की रचनाओं के केन्द्र में नहीं हैं। केशव के साहित्य में काव्यशास्त्रीय निरूपण का अद्भूत प्रयोग देखा जा सकता है।

बिहारी के दोहों में भी नायिकाभेद एवं नखसिख वर्णन का चित्रण है। चिंतामणि, भिखारीदास मतिराम, कुलपति मिश्र, दूलह एवं रसनिधि की रचनाओं में काव्यशास्त्रीय निरूपण का बेजोड़ प्रयोग देखा जा सकता है, लेकिन यह साहित्य जनसामान्य का साहित्य नहीं है। दरबारी साहित्य में कवि और चारण राजाओं की प्रसस्ति हेतु लिखते थे। मुक्तिबोध की दृष्टि में यह साहित्य

जनसामान्य की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं है। क्योंकि सामंती समाज में उत्कृष्टता का प्रश्न भी दरबारी स्वर में निर्धारित होता है। रीतिकालीन रचनाओं में श्रृंगारिकता की प्रधानता अधिक रही है।

हिन्दी साहित्य में आलोचना का प्रादुर्भाव भारतेंदु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' नामक रचना प्रारंभ माना जाता है। आलोचना का व्यस्थित एवं परिष्कृत स्वरूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पल्लवित किया है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'हिंदी साहित्य का इतिहास' आज की आलोचना में भी प्रमुख स्थान रखती है। इसके पश्चात् हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि प्रबुद्ध आलोचक हुए हैं। इनकी आलोचना एंव विचारधारा अलग-अलग रही है। मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रचनाकार हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा का संबंध सर्वहारा वर्ग से है। मुक्तिबोध की साहित्यिक आलोचना में इसका प्रभाव साफ-साफ देखा जा सकता है। वे किसी भी विचारधारा के अंधभक्तगामी नहीं हैं, क्योंकि कोई भी विचारधारा मुकम्मल नहीं होता है, वह युग एवं परिस्थिति को बहुत हद तक प्रभावित करता है। मार्क्सवाद का उदय पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ हुआ था। जो आज भी बदस्तूर जारी है। मुक्तिबोध की आलोचना में भी इन सभी संदर्भों का उल्लेख है। वे आलोचना को वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत दृष्टि से देखने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने इतिहास एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया में मानव और मानवेतिहास की विकास प्रक्रिया को अहम माना है। आलोचना तबतक तार्किक नहीं होगी, जबतक वह

किसी-न-किसी जड़ता का शिकार होती रहेगी। मुक्तिबोध इसी जड़ता के घोर विरोधी हैं।

सशक्त आलोचना समाज को प्रगतिशील बनाती है। साहित्य, इतिहास और समाजशास्त्रीय अध्ययन भी यही साबित करता है कि जब-जब समाज जड़ता का शिकार हुआ, तब-तब समाज में आर्थिक, सामाजिक एक राजनीतिक असमानता फैली है। साहित्य में आलोचना का भी तर्कसंगत एवं मौलिक विवेचन आवश्यक है। मुक्तिबोध का रचनात्मक व्यक्तित्व, साहित्य एवं इतिहास की मौलिक एवं वैज्ञानिक विवेचना के लिए प्रतिबद्ध है।